सामाजिक विज्ञान की कक्षा में विद्यार्थियों का दैनन्दिन ज्ञान

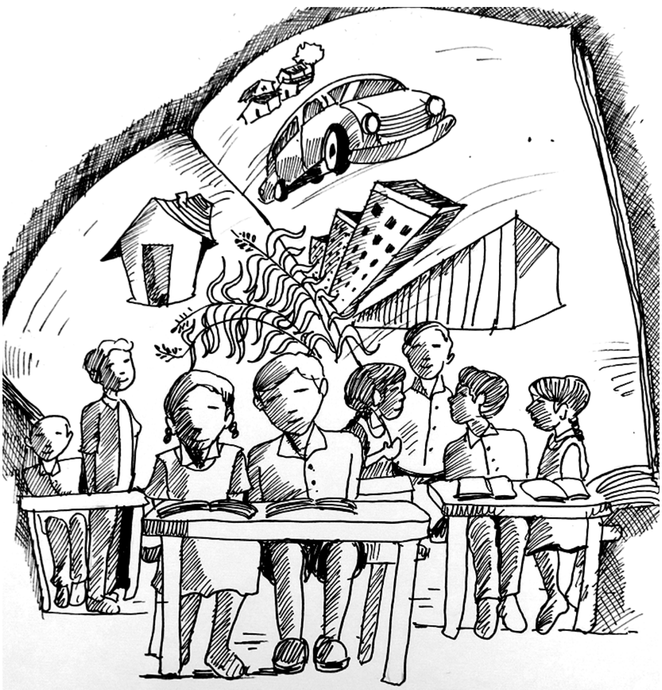
ऋषभ कुमार मिश्र

उच्च माध्यमिक कक्षाओं में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की प्रक्रियाओं को समझने में यह लेख मददगार होगा। लेख के शुरुआती हिस्से में लेखक सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए यह तर्क रखते हैं कि इन उद्देश्यों को हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ते रहने के लिए कक्षा में बच्चों की भागीदारी को सुनिश्चित करना ज़रूरी है। यह भागीदारी एक लोकतांत्रिक समाज के लिए आवश्यक मूल्यों को विकसित करने और बच्चों को एक ज़िम्मेदार नागरिक बनाने के लिए बहुत ज़रूरी है। वे सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं पर काम करने के अपने अनुभवों को प्रस्तुत करते हुए यह चित्रित करते हैं कि कक्षा में बच्चों की भागीदारी को कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है। -सं.

एक शिक्षक जो अपनी कक्षा में 'शिक्षार्थी-केन्द्रित' शिक्षणशास्त्रीय परिवेश का विकास करना चाहता है, उसका लक्ष्य होता है कि वह विद्यार्थियों के सन्दर्भजनित अनुभवों और दैनन्दिन ज्ञान को कक्षा में सम्मिलित करे। इसके आधार पर विद्यार्थियों को ज्ञानानुशासन की अवधारणाओं, तकनीकी शब्दावलियों और जानने की विधियों से युक्त करे। वह कक्षा में एकालाप के स्थान पर संवाद की संस्कृति विकसित करे। इन शिक्षणशास्त्रीय लक्ष्यों के समान्तर वह यह भी चाहता है कि अपने शिक्षार्थियों को सामाजिक यथार्थ से परिचित कराते हुए उन्हें इसके प्रति आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमता से युक्त करे। वह विद्यार्थियों में ऐसी कुशलताओं का विकास करे जिससे वे अपने दैनन्दिन परिवेश में एक समाज वैज्ञानिक की तरह सक्रिय रहें। उसके विद्यार्थी एक स्वायत्त विचारक और कर्ता की पहचान के साथ न केवल कक्षा में योगदान करें, बल्कि कक्षा के बाहर भी समानता, न्याय और बन्धुत्व जैसे मूल्यों को अपने व्यवहार में उतारते हुए न्याय-आधारित समतामूलक समाज की ओर उन्मुख हों। इस आकर्षक परिकल्पना को साकार करने का प्रयत्न स्वाभाविक रूप से इन सवालों को जन्म देता है कि कक्षा चर्चा में किताबों के अतिरिक्त किन अधिगम संसाधनों का प्रयोग किया जाए? इनके द्वारा कक्षा चर्चा में विद्यार्थियों की भागीदारी को कैसे बढ़ाया जाए? कैसे आकलन किया जाए कि उन्होंने अपेक्षित अवधारणाओं को सीख लिया है? ये शिक्षणशास्त्रीय प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन तब तक अधूरे हैं जब तक शिक्षक यह सवाल नहीं करता कि क्या उसने सामाजिक सच्चाइयों को अपनी कक्षा में स्थान दिया? क्या उसने अपने विद्यार्थियों के अनुभव वैविध्य को सीखने का संसाधन बनाया? क्या इसके मार्फ़त उसने हाशिए के समूहों की आवाज़ों को कक्षा का हिस्सा बनाया? कहीं उसके द्वारा कक्षा में दी गई प्रस्तुति सामाजिक सच्चाइयों के बारे में आदर्शवादी और यूटोपियन उपदेश तक तो सीमित नहीं है? जब शिक्षक ऐसे सवालों पर विचार आरम्भ करते हैं तो वे किताब, पाठ्यक्रम और परीक्षा के 'रुटीन' के साथ यह भी विचार करते हैं कि वे और उनके विद्यार्थी समाज की सच्चाइयों को देखने और उनसे टकराने के क़ाबिल कैसे बनें?

इस लेख में ऐसे ही एक प्रयोग की विवेचना की गई है जहाँ लेखक ने सामाजिक विज्ञान की शिक्षिका के साथ मिलकर विद्यार्थियों के अनुभव वैविध्य को ध्यान में रखते हुए 'मानव संसाधन' प्रकरण का शिक्षण किया। इस लेख में कक्षा शिक्षण के जिस आख्यान की चर्चा की गई है, वह दिल्ली के उत्तरी ज़िले में स्थित एक सरकारी विद्यालय का है।

इस विद्यालय की कक्षा आठ में सामाजिक विज्ञान विषय के अन्तर्गत 'मानव संसाधन' प्रकरण पढ़ाया गया। विद्यालय की शिक्षिका ने स्वेच्छा से इस अध्ययन में सहभागिता की। इस कक्षा में कुल तीस विद्यार्थी थे। अधिकांश विद्यार्थी दिल्ली के बाहर के राज्यों से आए प्रवासी परिवारों से सम्बन्धित थे, जिनके अभिभावक निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों से आते थे। इन विद्यार्थियों में 14 से 16 साल की आठ लड़कियाँ और बाईस लड़के थे। इस लेख में दो क्रियाकलापों पर विस्तृत चर्चा करते हुए उनके निहितार्थों को प्रस्तुत किया गया है।



चित्र : हीरा धुर्वे

क्रियाकलाप 1 : जनगणना के लिए प्रश्नावली निर्माण

कक्षा को प्रारम्भ करते हुए शिक्षक ने विद्यार्थियों के सामने एक काल्पनिक स्थिति प्रस्तुत की। उन्होंने निर्देशित किया कि मान लीजिए, कक्षा के विद्यार्थियों को अपने मोहल्ले की जनगणना करनी है। वे इस कार्य को कैसे करेंगे? कक्षा में इस तरह से अधिगम समस्या की प्रस्तावना विद्यार्थियों को अधिकार सौंपती है कि वे ख़ुद को समर्थ मानते हुए समाधान के लिए एक योजना बनाएँ। विद्यार्थियों ने इस अधिकार का बख़ूबी उपयोग किया। उनके द्वारा ही यह प्रस्ताव आया कि वे इस कार्य को प्रश्नावली के द्वारा करेंगे। उन्होंने इसके दो कारण प्रस्तुत किए। सबसे पहले, विद्यार्थियों ने अपने दैनिक जीवन से उदाहरण देते हुए इस प्रकार के सर्वेक्षण के अवलोकनकर्ता और प्रतिभागी होने का अनुभव साझा किया। दूसरा, उन्होंने अपनी कक्षा के पूर्व के क्रियाकलापों में इस विधि के प्रयोग का सन्दर्भ दिया। इसी तरह, विद्यार्थियों ने यह निर्णय लिया कि वे इस कार्य को समूह में करेंगे क्योंकि 'सब मिलकर करेंगे तो आसान हो जाएगा'; 'सबके प्रश्न मिलाकर बढ़िया प्रश्नावली बनाएँगे जिससे ज़्यादा लोगों की जनगणना कर लेंगे'। विद्यार्थियों की प्रस्तुत कार्ययोजना दर्शाती है कि वे प्रस्तावित अधिगम समस्या को एक वास्तविक समस्या मान रहे हैं और उसके लिए ऐसी योजना का विकास कर रहे हैं जो वैयक्तिक प्रयास के बदले समूह के प्रयास पर आधारित है। इससे कक्षा को सीखने वालों के समुदाय के रूप में भी स्थापित करने में मदद मिलती है। इसी अधिगम

परिवेश के अनुरूप विद्यार्थियों ने अपने-अपने समूहों में प्रश्नावली बनाई।

प्रत्येक समूह द्वारा बनाई गई प्रश्नावली के आरम्भ में परिवार के सदस्यों से जुड़े प्रश्न थे। उदाहरण के लिए, आपके घर में कितने सदस्य हैं? आपके परिवार में कितने बच्चे हैं? आपके घर में कितने लड़के हैं? आपके घर में कितनी लड़कियाँ हैं? आपके घर में कितने बुज़ुर्ग हैं? आपके घर में कितने पुरुष और कितनी स्त्रियाँ हैं? आप किस कक्षा तक पढ़े हैं? आपके घर में किसी की सरकारी नौकरी है? आपके घर में कितने लोग वोट डालते हैं? आपके दादा-दादी, नाना-नानी हैं? आपका धर्म क्या है? आपकी जाति क्या है? आपके घर में कितने लोगों की शादी हुई है? घर में जिन लोगों की शादी हुई है, क्या उनके बच्चे हैं? आपके पति का फ़ोन नम्बर क्या है? वे कहाँ रहते हैं? आपका बाल विवाह हुआ है या नहीं?

इन प्रश्नों से स्पष्ट है कि विद्यार्थी लिंग, आयु, व्यवसाय और शिक्षा के स्तर पर जनसंख्या को वर्गीकृत करने का प्रयास कर रहे हैं। विशेष यह है कि उनके लिए धर्म और जाति भी जनसंख्या के वर्गीकरण के आधार हैं। जबकि किताब में जनगणना के सम्प्रत्यय पर चर्चा करते हुए उसमें जाति और धर्म को जनसंख्या की विशेषताओं के अन्तर्गत नहीं रखा गया, लेकिन कक्षा विमर्श में ये मुद्दे प्रकट हुए। इसे पाठ्यान्तर समझकर छोड़ देना सरल, लेकिन घातक रास्ता है जो विद्यार्थियों के पूर्वग्रह और रूढ़ियों को ही पुनरुत्पादित करता है। जब विद्यार्थियों से पूछा गया कि वे जाति और धर्म को इतना महत्त्वपूर्ण कारक क्यों मानते हैं, तो एक विद्यार्थी का उत्तर था, "सर, वजीफ़ा लेने के लिए जाति प्रमाण-पत्र बनवाना होता है, इसलिए जाति जानना ज़रूरी है।" एक अन्य कारण दिया गया, "सर, सरकार इसके (धर्म) आधार पर योजनाएँ बनाती है इसलिए जानना ज़रूरी है।" इस तर्क की पुष्टि के लिए उदाहरण



चित्र : हीरा धुर्वे

पूछे जाने पर उसने बताया कि उसके गाँव में मुस्लिम बुनकरों को कर्ज़ में छूट दी गई थी। विद्यार्थियों की उक्त दोनों प्रतिक्रियाएँ जाति और धर्म जैसी सामाजिक अस्मिताओं की 'औपचारिक' स्वीकृति का परिणाम हैं।

इस चर्चा के दौरान एक अन्य विद्यार्थी का कथन था, "हर व्यक्ति का एक धर्म और एक जाति होती है। इससे उसके पूर्वजों के बारे में पता चलता है।" स्पष्ट है कि वह इसे केवल संज्ञा के रूप में नहीं देख रहा है, बल्कि इससे सामाजिक अन्तःक्रिया में कैसे फ़र्क़ पैदा होता है, इसे भी संज्ञान में ले रहा है। इसी का परिणाम है कि जब कक्षा में चर्चा की गई कि क्या किसी की जाति और धर्म से आपको फ़र्क़ पड़ता है तो प्रथमदृष्टया विद्यार्थियों ने सहमति व्यक्त की कि ज़माना बदल रहा है, अब फ़र्क़ नहीं पड़ता। यहाँ रेखांकित करने वाला शब्द 'अब' है। इसका मतलब है कि पहले फ़र्क़ पड़ता था। इस विषय पर विद्यार्थियों ने अपने गाँवों से कुछ उदाहरण दिए जो जाति और धर्म के आधार पर विभेद को व्यक्त करते थे। इसी क्रम में विद्यार्थियों ने बदलते ज़माने का संकेतक देते हुए कहा कि अब छोटी जाति के लोग भी अमीर हो गए हैं। कुछ विद्यार्थियों ने इसी विचार श्रृंखला में जोड़ा

कि 'बड़ी जाति' के लोग भी 'छोटी जाति' का काम करते हैं। यहाँ अवलोकनीय है कि जाति का बड़ा और छोटा होना उनके विचारों में उपस्थित है। इससे वे आर्थिक स्थिति और व्यवसाय के निष्कर्ष भी निकाल रहे हैं। इसे वे ऐसे लेंस की तरह देख रहे हैं जो सामाजिक अन्तःक्रियाओं का योजक और विभाजक, दोनों है। सम समूह की स्थिति में उक्त सामाजिक आयाम योजक हैं, जबकि विषम समूह की स्थिति में ये विभाजक की भूमिका निभाते हैं। भारतीय सन्दर्भ में दूसरी स्थिति घातक है। इसे केवल 'सराहना' और 'जागरूकता' कहकर टाल नहीं सकते हैं। इसके लिए किताबी दुनिया के बाहर उपस्थित ख़बरों, आख्यानों और मिथकों पर आलोचनात्मक मनन आवश्यक है। यह कार्य हमारी कक्षाओं में होना चाहिए।

विद्यार्थियों की प्रश्नावली में कुछ रोचक प्रश्न बाल विवाह पर भी थे। इसपर चर्चा के दौरान एक विद्यार्थी ने कहा, "पहले के ज़माने में बाल विवाह होते थे।" उसके इस कथन के पूरे होने के साथ दूसरे विद्यार्थी की आवाज़ आई, "सर, आज भी मेरे गाँव में बाल विवाह होता है।" एक अन्य विद्यार्थी ने बाल विवाह पर आधारित टीवी धारावाहिक का उदाहरण दिया। छात्रों के अनुसार, बाल विवाह का कारण लड़कियों का विद्यालय न जाना है, जिससे 'वे घर पर ख़ाली रहती हैं और घर वाले शादी कर देते हैं'; जबकि लड़कियों के अनुसार बाल विवाह का कारण 'मजबूरी है क्योंकि उमर बढ़ जाने पर दहेज़ देना होता है'। कक्षा से पूछा गया कि बाल विवाह का क्या अर्थ होता है? एक विद्यार्थी ने बताया, "जब लड़की की उम्र 18 साल से कम हो और उसकी शादी कर दी जाए।" पूरक प्रश्न जब लड़के की उम्र को लेकर पूछा गया तो आयु सीमा 18 वर्ष ही बताई गई। यहाँ उन्हें सही सूचना प्रदान करते हुए उल्लेख किया गया कि लड़के की आयु 21 और लड़की की 18 वर्ष होनी चाहिए।

बाल विवाह के होने और उसके कारण को देखें तो छात्र और छात्राओं के प्रत्यक्षण में अन्तर का पता चलता है। यह अन्तर पितृसत्ता को खाद-पानी देता है। यदि हम पितृसत्ता की जकड़ को कमज़ोर करना चाहते हैं तो हमें प्रत्यक्षण में उक्त अन्तर को कक्षा में गहन संवाद का माध्यम बनाना होगा। सम्बन्धित शिक्षक ने ऐसा ही किया। जब विद्यार्थियों से पूछा गया कि यदि उनका विवाह कर दिया जाए तो? विद्यार्थियों ने इस काल्पनिक स्थिति को स्वीकार नहीं किया और इसके कुछ कारण बताए, मसलन 'अभी हम पढ़ रहे हैं', 'कुछ बन जाएँगे तब करेंगे', 'मेरे माता-पिता चाहते हैं कि मैं अपने पैर पर खड़ी होऊँ', 'ऐसा गाँव में होता है' आदि। विद्यार्थियों के जवाब शिक्षा की भूमिका को दर्शाते हैं जो व्यक्ति में कर्ता भाव का पोषण कर रही है। इसके साथ विद्यार्थियों ने सामाजिक बदलाव को भी इंगित किया कि 'माता-पिता ऐसा नहीं चाहते'। फिर भी, इस सवाल का उत्तर आना शेष



चित्र : हीरा धुर्वे

रह गया था कि जिनका आज भी बाल विवाह हो रहा है, वहाँ क्या कारण हैं? इस प्रश्न पर कक्षा के उत्तर 'ग़रीबी' को मुख्य कारण बता रहे थे, लेकिन कुछ छात्राओं ने इसे महिला हिंसा के सापेक्ष बताया। इन छात्राओं का मानना था कि सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से लड़कियों का विवाह कम उम्र में कर दिया जाता है। इनका यह भी मानना था कि ऐसी प्रवृत्ति गाँव में अधिक है। आप देख सकते हैं कि कैसे साफ़गोई से ये छात्राएँ सामाजिक सच्चाइयों के आख्यान को कक्षा में रख रही हैं। इन्हें दरकिनार नहीं किया जा सकता है। इन्हें ऐसे ताक़तवर कर्ता की भूमिका के लिए तैयार करना है जो समानुभूति के भाव के साथ सामाजिक बदलाव में भूमिका निभाएँ।

दूसरे प्रकार के प्रश्नों में सम्पत्ति से जुड़े प्रश्न थे : आपका घर कितने गज बड़ा है? आपके घर में संचार के कितने साधन हैं? आपके घर में कितने कमरे हैं? आपके पास कोई वाहन है? क्या आपका अपना घर है? घर में पीने का पानी कहाँ से आता है? आपके घर में टीवी, फ्रिज, कूलर है? आपके घर में शौचालय है या नहीं? आपके घर में शौचालय भारतीय शैली का है या पाश्चात्य? इस प्रकार के प्रश्नों का औचित्य सिद्ध करते हुए बताया कि 'घर से, रहने से, हैसियत पता चलती है इसलिए घर के बारे में सूचना माँगी गई है'। इससे यह भी पता चलेगा कि किसके पास राशनकार्ड और वोटर आईडी है? कितने किराएदार हैं? कितने लोगों के पास घर नहीं है? विद्यार्थियों की यही समझ उन प्रश्नों में भी देखी जा सकती है, जहाँ उन्होंने घर की गुणवत्ता को जानने के लिए शौचालय, पानी और बिजली से जुड़े सवाल बनाए थे। उपभोग की वस्तुओं से सम्बन्धित सवालों का औचित्य सिद्ध करते हुए विद्यार्थियों का कहना था, "सर, बिज़नेस कई प्रकार का होता है। कोई रेहड़ी लगाता है तो वो भी बिज़नेस कर रहा है। कोई बड़ी दुकान वाला है तो वो भी बिज़नेस कर रहा है। जब हम पूछेंगे कि सामान कहाँ से ख़रीदते हैं, किस ब्रांड का ख़रीदते हैं तो पता चलेगा कि कितने अमीर हैं या ग़रीब। विद्यार्थी सम्पत्ति के आकलन के लिए घर और उसकी विशेषताओं को संकेतक मान रहे हैं। इसके अलावा, वे जनसंख्या की विशेषता के रूप में किराएदारों की मौजूदगी को भी उभार रहे हैं। यह प्रवृत्ति उनके दैनिक सामुदायिक विमर्श का हिस्सा है जिसे संज्ञान में लेते हुए चर्चा का हिस्सा बनाया गया। इस प्रकरण में रेखांकित करने वाला तथ्य यह है कि यदि वे सार्वजनिक सुविधाओं और राज्य के विविध तंत्रों के ज़मीनी क्रियान्वयन की हक़ीक़त से परिचित हैं, तो उसे कक्षा में कैसे स्थान दिया जाए? कैसे उन्हें मकान मालिक और किराएदार जैसे नए पदानुक्रम के बारे में मनन का अवसर दिया जाए? इन सामाजिक सच्चाइयों के बीच आलोचनात्मक चिन्तन करने वाले विद्यार्थियों को तैयार करेगा। वे पहचान और हैसियत का वर्गीकरण मात्र नहीं करेंगे, बल्कि उनमें निहित कारणों की पड़ताल भी करेंगे।

क्रियाकलाप 2 : परिवार का मौखिक इतिहास

सम्बन्धित पाठ्यपुस्तक में प्रवासन को जनसंख्या परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक के रूप में बताया गया है। इसमें यह सूचना भी दी गई है कि लोग आर्थिक अवसरों, शिक्षा और स्वास्थ्य की तलाश में एक स्थान से दूसरे पर चले जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्राज्यीय प्रवास के कारणों की चर्चा की गई। प्रस्तुत प्रयोग के अन्तर्गत शोध के सहभागी विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि के अनुरूप विद्यार्थियों को अपने परिवार के मूल स्थान (ग्रामीण परिवेश) से जुड़े अनुभव साझा करने को कहा गया। कक्षा के सम्मुख समस्या रखी गई कि क्या उन्हें अपने परिवार के मूल स्थान से नगर आने के इतिहास के बारे में जानकारी है? कुछ विद्यार्थियों ने जानकारी को साझा करने का प्रयास किया। इन जानकारियों के आधार पर कक्षा के विद्यार्थियों को अपने-अपने परिवार का इतिहास जानने का सुझाव दिया गया। कक्षा ने इस सुझाव को

स्वीकार किया। इस इतिहास को जानने का स्रोत विद्यार्थियों द्वारा अपने परिवार के सदस्यों, विशेष रूप से बुज़ुर्गों, को बताया गया। इस इतिहास को जानने के लिए विद्यार्थियों ने प्रश्नों का सुझाव दिया। इन प्रश्नों को ब्लैकबोर्ड पर लिखा गया। तदुपरान्त इन प्रश्नों का सन्दर्भ लेते हुए उन्हें 'अपने परिवार के दिल्ली आने के इतिहास' की खोज करने के लिए प्रश्नावली बनाने को निर्देशित किया गया। विद्यार्थियों ने अपने परिवार के इतिहास को जानने के लिए साक्षात्कार प्रश्नावली तैयार की। इस प्रश्नावली के प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से विद्यार्थियों ने अपने परिवार के दिल्ली प्रवासन के मौखिक इतिहास को जाना। ये आख्यान वयस्क और बच्चों की अन्तःक्रिया के रूप में शिक्षणशास्त्रीय विमर्श को दिखाते हैं जहाँ विद्यालय की संस्थागत औपचारिकताएँ मौजूद नहीं थीं। ये मौखिक इतिहास ही कक्षा चर्चा के लिए शिक्षण सामग्री बने।

अगले कालांश में सभी विद्यार्थी अपने-अपने साक्षात्कार के साथ चर्चा के लिए तैयार थे। उनसे कहा गया कि वे चार-चार के समूहों में बैठ जाएँ और साक्षात्कारों के प्राप्त उत्तरों पर बातचीत करते हुए अपने-अपने परिवार के इतिहास की परस्पर तुलना करें। इसके बाद इन्हीं प्रश्नों पर पूरी कक्षा के साथ भी चर्चा की गई। इस चर्चा में उभरकर आया कि अधिकतर परिवार उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड और राजस्थान से आए हैं।

प्रवास के महत्त्वपूर्ण उत्प्रेरक आर्थिक परिस्थितियाँ, परिवार के साथ आना, देश का विभाजन (पाकिस्तान से आना), आदि बताए गए। यहाँ ध्यान देने योग्य यह रहा कि विद्यार्थियों ने जो साक्षात्कार लिया, उसमें लिखा था :

"मैं नौकरी खोजने दिल्ली आया।"

'मैं ताऊजी के साथ धन्धा करने आया।' (यहाँ 'मैं' विद्यार्थी के अभिभावक द्वारा प्रयुक्त है।)

विद्यार्थियों ने कक्षा में इसी बात को रखते हुए कहा कि वे आर्थिक कारणों से दिल्ली आए। इसी प्रकार एक विद्यार्थी ने कहा, "दिल्ली में संसाधन अधिक थे इसलिए उनका परिवार यहाँ आया।" इन उदाहरणों में दैनिक ज्ञान से अकादमिक ज्ञान में रूपान्तरण को पहचाना जा सकता है। एक छात्रा ने सवाल उठाया, "मेरा घर तो दिल्ली में है और मैं पैदा भी दिल्ली में ही हुई हूँ। क्या मैं भी प्रवासी हूँ?" उसके इस प्रश्न ने कक्षा में एक नई बहस का अवसर दिया। अब कैसे तय किया जाए कि वह प्रवासी है या नहीं? इस समस्या पर जब अन्य विद्यार्थियों को राय देने को कहा गया तो इस प्रकार के विचार प्रकट हुए :

विद्यार्थी 1 : "वह दिल्ली में पैदा हुई है इसलिए वह प्रवासी नहीं है।"

विद्यार्थी 2 : "लेकिन उसके दादा तो बाहर से आए थे।"

विद्यार्थी 3 : "सर, पूछिए कि जन्म प्रमाण-पत्र कहाँ का है?"


चित्र : हीरा धुर्वे

शिक्षक : “जन्म प्रमाण-पत्र से क्या मतलब?”

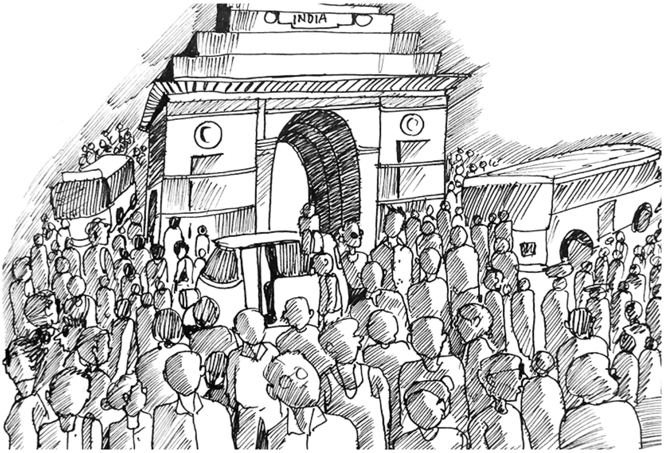
विद्यार्थी 3 : “अरे सर, वही जो एडमिशन के समय देते हैं।”

शिक्षक : “आपको अपने दोस्तों की राय से क्या लगता है?”

छात्रा चुप रहती है। थोड़ी देर बाद बोलती है। “सर, मैं तो यहीं पैदा हुई हूँ लेकिन मेरा परिवार प्रवासी है।”

उपर्युक्त संवाद से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की बातचीत से उन्हें सोचने के लिए नए प्रश्न मिले। इन प्रश्नों के उत्तरों की खोज ने ज्ञान के सह-निर्माण के अवसर दिए। कक्षा चर्चा में यह भी सामने आया कि लोग अधिकांशतः उन्हीं स्थानों पर प्रवास करते हैं, जहाँ उनके जानने वाले या रिश्तेदार रहते हैं। कुछ बच्चों ने अपने आख्यान में एक से अधिक महानगरों में प्रवासन के बारे में भी साझा किया। जैसे– पिता पहले मुम्बई गए थे बाद में दिल्ली आ गए। साथ ही दिल्ली के भीतर भी एक उपनगर से दूसरे उपनगर के प्रवासन पर बात की। ‘धन्धा करने’, ‘गाड़ी सीखने’, ‘घर से ग़ुस्सा होकर आने’, ‘पाकिस्तान से आने’, ‘दिल्ली घूमने के लिए आने और रुक जाने’ की कहानियाँ भी प्रकाश में आईं। एक बात उभरकर आई कि दूसरी पीढ़ी के प्रवासी दिल्ली के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीकों के आत्मसातीकरण को अपनी पहचान से जोड़कर बता रहे थे। इसके लिए इन्होंने अपनी भाषा, खान-पान की आदतों और दिल्ली के महानगरीय प्रतीकों का उदाहरण दिया। विद्यार्थियों ने दिल्ली की जनसंख्या के बढ़ने में प्रवास की भूमिका को पहचाना और उसपर चर्चा की। यह सवाल भी उठाया कि अगर ग़रीब गाँवों से चलकर दिल्ली आ जाता है तो अमीर लोग कहाँ जाते हैं? क्या वे विदेश चले जाते हैं? इस दिशा में बच्चों का सोचना प्रवास की संकल्पना की इस मान्यता की ओर इशारा करता है कि स्थान का आकर्षण प्रवास का प्रेरक होता है।

जनसंख्या में परिवर्तन को प्रेरित करने वाले कारक के रूप में प्रवास को विद्यार्थी किस प्रकार समझते हैं, इसका उदाहरण यहाँ देख सकते हैं। “मेरे पापा बताते हैं कि हमारी कॉलोनी में पहले बहुत कम लोग थे। वहाँ कोई आकर रहना नहीं चाहता था लेकिन आज पूरी कॉलोनी आबादी से भर गई है।” यहाँ ‘आबादी’ का प्रयोग प्रमाण है कि विद्यार्थी दैनन्दिन ज्ञान को विषय ज्ञान से जोड़ रहा है। विद्यार्थियों ने एक ओर जहाँ प्रवास की सम्भावनाओं को उभारा, वहीं चुनौतियों को भी वे स्वयं कक्षा में ले आए। कक्षा के एक विद्यार्थी ने प्रवास के इसी पक्ष को सामने रखते हुए बताया कि उसके घर के पास चाय की दुकान पर एक लड़का काम करता है। वह अपने घर से अकेले दिल्ली आया और दिल्ली में ‘अपने गाँव के चाचा’ के यहाँ रहता है। जैसे ही कक्षा में यह आख्यान सामने आया, एक अन्य विद्यार्थी ने साझा किया कि उसके पापा की दुकान पर भी गर्मियों की छुट्टियों में काम करने के लिए लड़के आते हैं। ये आख्यान सामाजिक यथार्थ को कक्षा का हिस्सा बनाने का माध्यम बने। विशेष रूप से, बाल श्रम जैसी समस्या का कक्षा चर्चा में समावेश हुआ। इस क्रियाकलाप की एक विशेषता यह रही कि विद्यार्थियों ने एक समाज वैज्ञानिक की तरह पता लगाया कि लोग प्रवास क्यों करते हैं। साथ ही, प्रवास किस प्रकार जनसंख्या परिवर्तन से सम्बन्धित है, और प्रवास के मूल में निहित सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक कारण कौन-से हैं? बच्चों के विचारों के उत्स अनेक स्रोतों से जुड़े हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत परिवार के वयस्कों द्वारा बताया गया इतिहास है, जिससे चर्चा प्रारम्भ हुई और जो उनके दैनिक ज्ञान का हिस्सा है। इसी प्रकार, वे मीडिया का भी सन्दर्भ लेते हैं और विज्ञापन व फ़िल्मों की चर्चा करते हैं। कक्षा चर्चा के दौरान विद्यार्थियों से जब इस सवाल पर चर्चा की गई कि क्या वे अपने मूल स्थान को वापस जाना चाहेंगे, एक विद्यार्थी ने सूचनात्मक अन्दाज़ में बताया, “एक फ़िल्म में शाहरुख ख़ान विदेश से अपने गाँव आ गया था।” इसी प्रकार, एक अन्य विद्यार्थी



चित्र : हीरा धुर्वे

ने कहा, "सर, लड़की मुंबई जाती है और फ़ोन पर अपना घर मम्मी-पापा को दिखाती है।" वे स्कूल के विमर्श की भी मदद लेते हैं और 'आबादी की समस्या', 'संसाधनों के कारण दिल्ली आने' जैसी बातें कहते हैं। विद्यार्थियों की उक्त प्रतिक्रियाएँ प्रमाण हैं कि वे मीडिया की छवियों को भी अपने परिवेश से जोड़कर देख रहे हैं। इस माध्यम में सामाजिक सच्चाई की प्रस्तुति उनके लिए जानकारी का स्रोत है, लेकिन इसे भी प्रश्नांकित करने की आवश्यकता है। ऐसा करने पर ही काल्पनिक प्रस्तुति और ज़मीनी सच्चाई के बीच अन्तर के प्रति उन्हें सचेत किया जा सकेगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना एक ऐसी अधिगम संस्कृति के आख्यान को प्रस्तुत करती है जिसमें कक्षा में दैनन्दिन और विषय ज्ञान की उपलब्धता, शिक्षक एवं विद्यार्थी में संवाद-आधारित अन्तःक्रिया और शिक्षक के सतत सहयोग (स्कैफ़ोल्डिंग) से ज्ञान का सह-निर्माण हो रहा है। इन क्रियाकलापों द्वारा संचालित कक्षा में किताब के साथ-साथ विद्यार्थियों की आनुभविक दुनिया भी उपस्थित है जो चर्चा की सामग्री को समृद्ध कर रही है। इसी कारण विद्यार्थी अपने परिवेश की परिघटनाओं को एक समाज वैज्ञानिक की दृष्टि से देखने, समझने और जानने का प्रयास कर रहे हैं। कक्षा में शिक्षक की भूमिका अवधारणाओं और परिघटनाओं को जानने, तर्क करने, दैनिक जीवन में उनकी खोज करने, तुलना करने, आदि संज्ञानात्मक क्रियाओं को उत्प्रेरित और निर्देशित करने वाले की है। इसी माध्यम से विद्यार्थियों के परिवार, समुदाय, लोकप्रिय प्रचार माध्यमों से उत्पन्न विमर्शों को कक्षा में सम्मिलित किया गया। इसके अलावा, यह भी देखा जा सकता है कि ऐसे सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक मुद्दों, जो हमारे परिवेश में प्रासंगिक हैं और एक नागरिक की भूमिका में आलोचनात्मक चिन्तन की अपेक्षा करते हैं, के प्रति विद्यार्थी सचेत हैं। इसी कारण वे बढ़ती जनसंख्या, शिक्षा के अवसरों की उपलब्धता, प्रवासन और बाल श्रम जैसे मुद्दों पर विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि उनके विचार इन मुद्दों के प्रति वैयक्तिक राय हैं, लेकिन वे इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण हैं कि इनसे वृहत्तर समुदाय का परिप्रेक्ष्य कक्षा विमर्श का हिस्सा बनता है। इसे आधार बनाते हुए कक्षा में 'बताने और अपनाने' के बदले 'मनन और सम्प्रेषण' के उपागम को अपनाया गया।

ऐसे छोटे प्रयोगों के आधार पर बड़े दावे नहीं किए जा सकते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि विद्यार्थियों में सामाजिक सच्चाइयों को देखने की दृष्टि और उन्हें बदलने की तत्परता को पोषित किया जा सकता है। इस लेख में जिन दो कक्षा प्रकरणों की चर्चा की गई, उनसे इतना तो स्पष्ट है कि उच्च प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता और विभेद के विभिन्न आधारों से परिचित हैं। वे इससे सम्बन्धित अनुभवों और प्रत्यक्षणों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। कक्षा में उनके अनुभवों और प्रत्यक्षणों पर मनन का अवसर देने और उनपर बातचीत करने से न केवल उनके पूर्वाग्रह को सम्बोधित

किया जा सकता है, बल्कि इसके माध्यम से उन्हें अवसर दिया जा सकता है कि वे वैश्वीकरण और नवउदारवाद के प्रभाव में परिवारों और समुदायों में हो रहे बदलावों को संज्ञान में लें। वे अपने परिवेश में बढ़ती सांस्कृतिक विविधता की सराहना करते हुए उसके प्रति सकारात्मक दृष्टि रखें और लोक नीतियों के प्रति आलोचनात्मक मनन करते हुए इनके क्रियान्वयन में निहित वर्चस्व और विचारधारा के पहलुओं के प्रति सचेत रहें।

अकसर ऐसे शिक्षण प्रयोगों को विचारधारा विशेष से जोड़कर देखा और पढ़ा जाता है। ऐसे पाठक ख़ुद को किताबी ज्ञान, परिभाषा, तथ्य और आँकड़ों तक सीमित रखकर तटस्थता की मान्यता को बनाए रखना चाहते हैं। यहाँ उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यचर्या, किताबें और अन्य अधिगम सामग्रियाँ कभी भी अराजनीतिक और वैचारिक दृष्टि से तटस्थ नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में उनकी तटस्थता उस विश्व दृष्टि का समर्थन है जिसे किताबों एवं अन्य संचार माध्यमों में प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में शिक्षक पाठक की बात भी करें तो, शिक्षक केवल तकनीकी कुशलता द्वारा पाठ्यचर्या के ज्ञान को वैध मानने वाला कर्ता नहीं है। उसकी भूमिका ख़ुद को और अपने विद्यार्थियों को इतना सक्षम बनाने की है कि वे 'ज्ञान' को प्रश्नांकित कर सकें, विस्तार दे सकें और ज्ञान की वस्तुनिष्ठता के नाम पर उपेक्षित वैकल्पिक और हाशिए के स्वरों को पहचान सकें। हमें ध्यान रखना होगा कि कक्षा में केवल सराहना और जागरूकता से काम नहीं चलेगा। कक्षा और विद्यालय के अभ्यासों, परिवेश और समुदाय की आलोचना करने और बदलने की तत्परता आवश्यक है। यह बदलाव की आकांक्षा किसी बड़े आन्दोलन या समर्थन की माँग नहीं करती। इसके लिए तो कक्षा ऐसी लघु दुनिया है, जहाँ विद्यार्थियों को बराबरी का स्थान देकर समता, न्याय और लोकतंत्र का अभ्यास किया जा सकता है। ऐसे अभ्यास में आनुभविक ज्ञान का तात्पर्य किताब के अतिरिक्त ऐसी सूचनाओं की माँग करना नहीं है जो परिवार, समुदाय और मीडिया द्वारा प्रसारित हों। इसमें उस भोगे हुए यथार्थ को सम्मिलित करना आवश्यक है, जिसमें मनो-सामाजिक पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इससे हम उन अनुभवों और आख्यानों से परिचित होते हैं जो अनसुने रह गए थे। इस तरह से एक विषय या प्रकरण को विविध दृष्टियों से देखने का अवसर मिलता है। ये विविधता वैयक्तिकता के स्थान पर सामुदायिकता को पोषित करती है और अन्ततः समुदाय द्वारा समस्याओं की पहचान और समाधान पर मनन, बदलाव का माहौल तैयार करती है, जिसकी शुरुआत कक्षा से होती है।

ऋषभ कुमार मिश्र महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के शिक्षा विभाग में प्राध्यापक हैं। शिक्षा और समाज से जुड़े विषयों पर लेखन में सक्रिय हैं। इन्होंने केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय से 'बच्चों की सामाजिक विज्ञान की समझ' विषय पर शोध कार्य किया है।

सम्पर्क : rishabhrkm@gmail.com